

प्रवचन नं. ८१ श्लोक २० की टीका दिनाङ्क ०९-०९-१९७८ शनिवार
भाद्र शुक्ल ७, वीर निर्वाण संवत् २५०४

(दशलक्षण पर्व का) चौथा (दिन) उत्तम शौच — शौच । चार आ गये न पहले ? क्रोध से विरुद्ध उत्तम क्षमा, मान से विरुद्ध मार्दव, माया से विरुद्ध सरलता, लोभ से विरुद्ध शौचता — निर्लोभता, वह आज चौथा दिन है ।

समसंतोसजलेण य जो धोवदि तिह्ललोहमलपुंजं ।

भोयणगिद्धिविहीणो तस्स सउच्चं हवे विमलं ॥३९७॥

मुनि की व्याख्या है न मुख्य तो, उसे जानना तो चाहिए न ? मुनि के चारित्र धर्म में दस प्रकार के धर्म जो आनन्ददाता सुखस्वरूप सुख का जिसको अनुभव होता है, उसको यह उत्तम धर्म होता है । आहाहा ! जो मुनि समभाव — कंचन और तृण दोनों के प्रति जिनको समभाव है क्योंकि वे तो ज्ञेय हैं । कंचन हो या तृण हो, तिनका हो, उन्हें यह ठीक है और यह अठीक, उनमें ऐसा कुछ नहीं, वे तो ज्ञेय हैं । अतः सब में समभाव और सन्तोष (होता है) और आत्मा में आनन्द की प्राप्ति करना, यह सन्तोष... आहाहा ! यह है । सन्तोष अर्थात् यह राग को घटाकर सन्तोष यह ठीक, परन्तु मूल तो अतीन्द्रिय आनन्द का प्रगट करना, उसमें सन्तोष मानना । मैं सुखरूप हूँ, मैं अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप हूँ, उसका नाम शौचधर्म / निर्लोभ धर्म कहा जाता है । आहाहा !

तिह्ललोहमलपुंजं — तृष्णा और लोभ, भविष्य की किसी पदार्थ की इच्छा वह तृष्णा (है और) लोभ — वर्तमान प्राप्त पदार्थ में इच्छा, वह लोभ है । समझ में आया ? भविष्य में पदार्थ मिलने की इच्छा, वह तृष्णा और वर्तमान प्राप्त पदार्थ में लोभ — उसका नाम यहाँ लोभ कहते हैं । दोनों मल को धोवे — एक बात । भोजन की गृद्धि, दूसरा तो मुनि को है नहीं; एक आहार है, आहाहा ! उसकी गृद्धि अतिचाररहित हो, उस मुनि का चित्त निर्मल होता है, आनन्द होता है, उनको उत्तम शौच धर्म होता है । लो, समभाव की व्याख्या आ गयी । मुनि को केवल आहार का ग्रहण है, उसमें भी तीव्रता नहीं । लाभ, अलाभ, सरस-नीरस में समबुद्धि रहते हैं, तब उत्तम शौचधर्म होता है ।

वर्तमान लोभ के चार प्रकार — (१) जीवितव्य का लोभ, (२) आरोग्य रहने का लोभ, आहाहा! (३) इन्द्रियाँ बनी रहने का लोभ, इन्द्रिया अनुकूल रहने का लोभ और (४) उपभोग का लोभ — ये चारों अपने और अपने सम्बन्धी स्वजन, मित्र आदि के दोनों के चाहने से आठ भेद होते हैं। आहाहा! इसलिए जहाँ सब ही का लोभ नहीं होता.... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... और आनन्द। इसका नाम यहाँ शौच अर्थात् पवित्र धर्म कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया? यह चौथे बोल की — सन्तोष की (उत्तम शौचधर्म की) बात हुई। (अब समयसार का) चलता अधिकार (लेते हैं)।

टीका आयी, यहाँ आया न? अब, कोई तर्क करे कि आत्मा तो ज्ञान के साथ तादात्म्यस्वरूप है,.... क्या कहते हैं? भगवान सन्तों ने जब ऐसा कहा कि तुम ज्ञानस्वरूपी भगवान हो, उसकी सेवा करो, उपासना करो। आहाहा! जैसे देव और देवी की उपासना करते हैं, मिथ्याभ्रम अज्ञानी... वैसे तुम ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, ज्ञानमूर्ति प्रभु दिव्य भगवान आत्मा की सेवा करो। आहाहा! अर्थात् उसमें एकाग्र होओ! आहाहा! ऐसा शिष्य ने सुना, गुरु ने कहा — तो शिष्य प्रश्न करता है कि आत्मा तो ज्ञान के साथ तद्रूप है ही, आत्मा और ज्ञान तो एकरूप है, उसकी सेवा करना (ऐसा) नया आप क्या कहते हो? आत्मा और ज्ञान अर्थात् स्वभाव, ज्ञानस्वभाव और आत्मा तो तादात्म्य है। जैसे अग्नि और उष्णता तादात्म्य है, तद्रूप है; वैसे भगवान आत्मा... आहाहा! और ज्ञान जानन-जानन स्वभाव से आत्मा तद्रूप तो है ही... आहाहा! अलग नहीं। यह आत्मा अपना ज्ञानस्वभाव स्थायी ज्ञायकस्वभाव से अलग नहीं है, इसलिए वह ज्ञान का नित्य सेवन करता है;.... आहाहा! इस कारण ज्ञान और आत्मा एकरूप है — तद्रूप है, इस कारण आत्मा ज्ञान की सेवा तो करता ही है। आहाहा! तब फिर उसे ज्ञान की उपासना करने की शिक्षा क्यों दी जाती है?... आहाहा! भगवान आत्मा द्रव्यस्वरूप, उसका जानन-ज्ञानस्वभाव वह तो तद्रूप है, तादात्म्य है तो फिर ज्ञान की सेवा करने का उपासक, उपासना करो, सेवा करो, आहाहा! स एवः — वह मैं हूँ — ऐसी दृष्टि करके एकाग्र होओ। आहाहा! ऐसा क्यों कहते हैं?

उसका समाधान यह है — ऐसा नहीं है।.... सुन! भगवान आत्मा और ज्ञान —

त्रिकाली स्वभाव के साथ तादात्म्य द्रव्य-गुण से है परन्तु पर्याय ने उसकी सेवा नहीं की; पर्याय, राग और पुण्य — पाप के विकल्प की सेवा करती है। आहाहा! पर की सेवा की तो यहाँ बात है ही नहीं। यह ज्ञान की पर्याय वर्तमान में, शुभाशुभराग जो इसमें है नहीं। है ज्ञान और आत्मा एक है परन्तु राग तो उसमें है नहीं, तथापि वह अनादि से पुण्य और पाप के राग की सेवा करते हैं। आहाहा! क्योंकि ऐसा नहीं है। यद्यपि आत्मा ज्ञान के साथ तादात्म्यस्वरूप से है.... भगवान आत्मा ज्ञानरूपी स्वच्छता का दर्पण, उससे तो अभिन्न है ही। आहाहा! तथापि वह एक क्षणमात्र भी ज्ञान का सेवन नहीं करता;.... आहाहा!

ज्ञान, स्वभाव और आत्मा, स्वभावी — उसको एकरूप है, तथापि एक क्षणमात्र भी अनन्त काल में कभी ज्ञान की उपासना नहीं की है। आहाहा! सूक्ष्म बात है। एक क्षणमात्र भी ज्ञान का सेवन नहीं किया। शास्त्र का ज्ञान किया, उसकी सेवा की परन्तु अपना ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा है, उस ओर का आश्रय करके एकाग्र होना एक क्षणमात्र भी नहीं किया। प्रभु! आहाहा! समझ में आया? यह पर्याय में रागादि होते हैं, शास्त्र का ज्ञान होता है, दया, दान का, भक्ति का भाव होता है, उसकी पर्याय में सेवा अर्थात् एकाग्रता होती है, उसकी सेवा अनादि से करता है। आहाहा! परन्तु ज्ञान की पर्याय ने अपना ज्ञान और आत्मा एक है, उस सन्मुख होकर आत्मा के ज्ञान की सेवा कभी नहीं की है।

इस स्त्री-पुत्र की सेवा करता है, वह तो यहाँ बात है ही नहीं, वह तो व्यर्थ में मानता है। यह राग करे परन्तु (उनकी सेवा) यह पर का कर नहीं सकता। पुत्र को सम्हालता है, यह रोग हुआ, इसलिए हम ध्यान रखते हैं, इसलिए ऐसा हुआ न।

श्रोता : लड़के को लटकता छोड़ा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ लड़का उसका था ? उसका आत्मा है और शरीर है, वह तो परद्रव्य है। आहाहा! यहाँ तो वहाँ तक कहते हैं कि परसन्मुखता के झुकाववाला जो शुभ-अशुभभाव पुण्यादि होता है, उसमें जो एकाग्र होकर सेवा करता है, तो वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! परवस्तु है।

अपना चिदानन्दस्वरूप ज्ञानस्वभावी प्रभु की ओर की उपासना का झुकाव नहीं और राग तथा पुण्य के विकल्प में झुकाव है, वह क्षणमात्र भी आत्मा की सेवा नहीं करता है। आहाहा! वह कुसेवा करता है। पहले कहा न? आहाहा! यह पाप का भाव और पुण्य का भाव, उसमें एकाग्रता है, वह सेवा करता है कुसेवा, वह तो कुसेवा है। आहाहा! पर की सेवा की तो यहाँ बात ही नहीं है। देश की सेवा करो, इसका यह करो — वह कर ही नहीं सकता, फिर प्रश्न कहाँ? आहाहा! यहाँ तो अपने स्वभाव को भूलकर पुण्य और पाप के भाव... आहाहा! और क्षणिक वर्तमान पर्याय में एकाग्रता की सेवा अनादि से है। आहाहा! यहाँ कहे तो पर्यायबुद्धि — ऐसा कहना है, दूसरी भाषा है, भिन्न-भिन्न प्रकार से समझाना है न? वरना तो अनादि का... भगवान! तेरा वस्तुस्वभाव ज्ञान प्रभु चैतन्यमूर्ति, प्रज्ञा ब्रह्म... आहाहा! उस ओर की क्षणमात्र भी तूने उसका आदर करके, स्वीकार करके, सत्कार करके, उसमें कभी एकाग्र नहीं हुआ। आहाहा! एक क्षणमात्र भी ज्ञान की सेवा नहीं करता है। आहाहा! तो ज्ञान और आत्मा तो एकमेक है न? परन्तु एकमेक है परन्तु पर्याय में कहाँ एकमेक माना? वह तो द्रव्यगुण में एकमेक है। समझ में आया? तीनों बोल ले लिये। द्रव्य अर्थात् वस्तु; ज्ञान अर्थात् गुण, वह तो एकरूप है परन्तु पर्याय उसमें एकरूप नहीं हुई, तब तक उसने ज्ञान की सेवा नहीं की। आहाहा! दया, दान का राग और शास्त्र का ज्ञान किया, उसकी सेवा की। आहाहा! गजब बात करते हैं न! यह तो पर्यायबुद्धि, अज्ञानबुद्धि है। आहाहा! है? शिष्य का प्रश्न था, उसका उत्तर है। शिष्य का यह प्रश्न था कि भगवान आत्मा... जैसे अग्नि और उष्णता तो एकरूप ही है, कोई अलग नहीं है, वैसे ही भगवान आत्मा और ज्ञानस्वभाव एकरूप / तद्रूप है, वे भिन्न तो हैं नहीं और तुम कहते हो कि आत्मा ज्ञान की सेवा नहीं करता। हम तो कहते हैं कि वह सदा ही सेवा करता है (उससे कहते हैं) कि सुन तो सही। आहाहा!

ज्ञानस्वभाव आत्मा — ऐसी दृष्टि करके उसमें एकाग्र नहीं हुआ तो क्षणमात्र भी उसने आत्मा की सेवा नहीं की। आहाहा! यहाँ ज्ञान की सेवा कहना है। आहाहा! ज्ञानस्वभाव भगवान आत्मा की पर्याय में उस ओर झुककर... आहाहा! वर्तमान में दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम और शास्त्र का ज्ञान — उस सन्मुख का झुकाव अनादि से है। आहाहा! परन्तु तुम्हारा ज्ञान और आत्मा एक है — ऐसी सेवा / एकाग्रता कभी नहीं

की है, प्रभु! आहाहा! अब ऐसा मार्ग! यहाँ तो कहते हैं, अभी पर की सेवा करो, देश सेवा करो, धर्म होगा। ए...ई...! सब युवक वे कहें चलो हो...हा... हो...हा...! देश की सेवा करें, कौन करे प्रभु? सुन तो सही! सेवा करते हो तो अज्ञान से पुण्य-पाप की सेवा की है। आहाहा! परन्तु उस पुण्य-पाप से और पुण्य-पाप जिसमें नहीं हैं, जिसमें ज्ञानस्वभाव ही है... आहाहा! उस ओर के ज्ञान की एकाग्रता — स्वभाव की एकाग्रता, स्वभाव सन्मुख की उपासना एक क्षणमात्र भी नहीं की है। आहाहा! यह तो एक क्षण हुआ तो समाप्त — जन्म-मरण का अन्त आ गया। आहाहा!

चैतन्यस्वभावी भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु... आहाहा! उस सन्मुख का बाह्य जो ज्ञान और रागादि की महत्ता छोड़कर... आहाहा! अपने ज्ञायकभाव से भरा पड़ा प्रभु, उस सन्मुख की दृष्टि करके, उसमें एकाग्रता होना, उसका नाम ज्ञान की सेवा करना कहा जाता है। यह शास्त्र-वास्त्र पढ़ना वह ज्ञान की सेवा नहीं है — ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! बन्ध अधिकार में शब्दज्ञान कहा था न? जितना शास्त्र का ज्ञान है, वह तो शब्द का — जड़ का ज्ञान है, चैतन्य का नहीं। आहाहा! समझ में आया? शास्त्र है, पुस्तक — पृष्ठ, उसकी भक्ति करना, अरे...! उसका ज्ञान करना, वह भी... आहाहा! वह पर के ज्ञान की / शब्दज्ञान की सेवा है। कठिन काम भाई! वीतरागमार्ग कोई अलौकिक है। आहाहा! वह शास्त्र — चाहे तो समयसार हो, प्रवचनसारादि (हो), उस शास्त्र का ज्ञान करे, यह शास्त्र ऐसा कहता है, ऐसा कहता है तो वह तो शब्दज्ञान हुआ और शब्दज्ञान हुआ, वह आत्मज्ञान नहीं है। आहाहा! शाब्दिक ज्ञान में जिसका प्रेम है, वह शब्द की सेवा करता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। भूपतभाई! वहाँ तुम्हारे व्यापार में धर्म विलास सुनने में कहीं नहीं है। ऐसा अभी गजब हो पड़ा है, भाई! आहाहा! लोगों ने बात बहुत बदल डाली है।

श्रोता : लोगों ने सब विपरीत कर डाला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विपरीत कर डाला है। आहाहा! भाई! तू कहाँ है? यह तो ज्ञानस्वभाव में भगवान तो रहता है। आहाहा! क्या इस राग के भाव में आत्मा है? अरे...! क्या नवतत्त्व की भेदवाली श्रद्धा में आत्मा है? क्या पंच महाव्रत के विकल्प में आत्मा है? आहाहा! क्या यह ग्यारह अंग का ज्ञान किया, नौ पूर्व का ज्ञान, आहाहा! प्रभु! उसमें

आत्मज्ञान नहीं आया। आहाहा! ऐसी बातें हैं। युगलजी! फिर लोगों को सोनगढ़ का एकान्त लगता है। भाई! परम सत्य तो यह है प्रभु! आहाहा! दुनिया अपने स्वार्थ के स्वच्छन्द से शास्त्र का अर्थ करे और माने कि हमने ज्ञान किया.... भाई! यह चीज कोई दूसरी है। आहाहा!

जहाँ भगवान ज्ञान का भण्डार भगवान, उस सन्मुख झुकाव से एकाग्रता होती है, उसने ज्ञान की सेवा की और जिसकी पुण्य-पाप और शाब्दिक ज्ञान... आहाहा! अरेरे! प्रभु क्या कहते हैं? शास्त्रज्ञान, वह शाब्दिक ज्ञान है, वह आत्मज्ञान नहीं। आहाहा! उस सेवा में झुकाव करने से अनन्त काल से क्षणमात्र भी भगवान आत्मा चिदानन्द भगवान प्रभु की सेवा नहीं की है। आहाहा! उस ओर का झुकाव एकाग्रता तेरी कभी नहीं हुई। आहाहा! समझ में आया? बहुत मर्म की बात है। आहाहा!

क्योंकि ? सेवन क्यों नहीं किया। **क्योंकि स्वयंबुद्धत्व (स्वयं स्वतः जानना)....** अपने से अन्दर ज्ञान की पर्याय से आत्मा को जानना, आहाहा! **अथवा बोधितबुद्धत्व (दूसरे के बताने से जानना) — इन कारणपूर्वक....** इन दो कारणपूर्वक ज्ञान की उत्पत्ति होती है।.... भगवान ज्ञानस्वरूपी तो है परन्तु पर्याय में ज्ञान की उत्पत्ति इस कारण से होती है — या तो स्वयं अन्तर आत्मा ज्ञान करे या बोधित-गुरु समझाये कि यह ज्ञान, वह आत्मा; तो (भी) फिर भी करना तो इसे ही है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी सूक्ष्म बातें हैं। इसलिए लोगों को ऐसा एकान्त लगता है और फिर हा...हो...हा...हो..., हा...हो... बाहर में बड़ा भाषण करे और लाखों लोगों का रंजन हो जाये। देखो! आहाहा! जवाहरलाल यहाँ आये थे, जवाहरलाल (पण्डित नेहरू) भावनगर (आये थे)। दो लाख लोग, लौकिक बातें करते थे। आहाहा! अरे! यह बात कहाँ? अरे! यहाँ कहते हैं मैं पर की सेवा करता हूँ, पर को सुविधा दे सकता हूँ, पर को असुविधा दे सकता हूँ, यह मान्यता भ्रम अज्ञान है। परन्तु यहाँ तो राग और शाब्दिक ज्ञान की सेवा करता हूँ, एकाग्र हूँ, वह भी मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! दूसरी भाषा में कहें तो वह पर्यायबुद्धि में पड़ा है। **‘पञ्चमूढ़ा परसमया’** आहाहा! वह परसमय में है। आहाहा!

भगवान आत्मा अपनी ज्ञान की सेवा का ‘स्वयंबुद्धत्व’ अपने से अन्तर में जाकर

करता है, या कोई गुरु समझाये, बस! इतनी बात। परन्तु करना तो उसे अन्तर से है, यह तो निमित्त से कथन है। 'बोधिबुद्धत्व जानना' — इस कारणपूर्वक ज्ञान की उत्पत्ति होती है।... देखो! पर्याय में, यह ज्ञान है और आत्मा है — ऐसे सन्मुख होकर सेवा करे, तब ज्ञान की उत्पत्ति होती है। तब उसे ज्ञान और आत्मा एक है — ऐसा तब उसने माना। आहाहा! समझ में आया? समयसार अर्थात् गजब बात है। साक्षात् सर्वज्ञ परमात्मा सीमन्धर भगवान की वाणी है। कुन्दकुन्दाचार्य सुनने गये थे, आहाहा! वह यह वाणी है। आहाहा! जिसमें एक-एक पद में और एक-एक श्लोक में भरपूर सागर भरा है। आहाहा! आहाहा! बहुत संक्षिप्त और सार यह कि प्रभु जो ज्ञानस्वभावी आत्मा है, उसका आश्रय / लक्ष्य छोड़कर पर्याय में जितना परसम्बन्धी ज्ञान और राग है, उसमें एकाग्र होने से मिथ्याबुद्धि पर्यायबुद्धि, अज्ञानबुद्धि है। आहाहा! उसने आत्मा की सेवा नहीं की है। आहाहा!

'स एव' भगवान, सेवा अर्थात् स एव भगवान-ज्ञानस्वरूपी वह मैं — ऐसी एकाग्रता ज्ञानस्वभाव में सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से एकाग्रता करना। आहाहा! ऐसा मार्ग है! लोगों ने न सुना हो, उन्हें ऐसा लगता है — यह क्या कहते हैं? यह नया कहाँ से निकाला? नया नहीं भाई! यह अनादि का मार्ग है, बापू! पवित्र ज्ञानस्वभाव से भरपूर भगवान है न? वह ज्ञान कहीं बाहर से आता नहीं है। आहाहा! शाब्दिक ज्ञान से वह आत्मज्ञान नहीं होता है — ऐसा कहते हैं। आहाहा! उस जड़ के ज्ञान से आत्मा का ज्ञान नहीं होता है — ऐसा कहते हैं। आहाहा!

इस आत्मा की ओर के झुकाव से आत्मा के ज्ञान की उत्पत्ति होती है। आहाहा! ऐसी बात है भाई! यहाँ तो बहुत समय से चलती है; इसलिए अब तो थोड़ा-थोड़ा (समझ में आता है)। नहीं तो अजीर्ण लगता है। कहो मोहनलालजी! ऐसी बात है भगवान! आहाहा! अन्दर बड़ा प्रभु पड़ा है न नाथ! परमेश्वरस्वरूप ही तू है। ज्ञान का परम ईश्वर, आनन्द का परम ईश्वर, आहाहा! शान्ति का परम ईश्वर (है।) उस तरफ तेरा झुकाव, स्वीकार तूने कभी नहीं किया, नाथ! आहाहा! जो चीज परिपूर्ण आनन्द और ज्ञान से भरी है, उसका तुझे स्वीकार नहीं हुआ तो तूने तेरे ज्ञान की सेवा नहीं की। आहाहा! बहुत कठिन काम!

या तो काललब्धि.... स्वकाल की प्राप्ति, उस समय में प्राप्ति काललब्धि, आये तब स्वयं ही जान ले अथवा कोई उपदेश देनेवाला मिले तब जाने — जैसे सोया हुआ पुरुष.... सोया हुआ, सोता हुआ पुरुष या तो स्वयं ही जाग जाये अथवा कोई जगाये तब जागे।.... आहाहा! जागता तो वह स्वयं है। आहाहा! यहाँ पुनः प्रश्न होता है कि यदि ऐसा है तो जानने के कारण से पूर्व.... आहाहा! ज्ञानस्वभाव भगवान (आत्मा) ऐसा ज्ञान नहीं किया, इससे पूर्व क्या यह अज्ञानी था? आहाहा! समझ में आया? ज्ञानस्वरूपी भगवान अज्ञानी था? आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु का ज्ञान न करे तो यह ज्ञानस्वभावी प्रभु पर्याय में अज्ञानी था? आहाहा! है? ऐसा है तो जानने के कारण से पूर्व क्या आत्मा अज्ञानी ही है.... आत्मा अज्ञानी है? आहाहा!

वेदान्तवाले को तो यह कठिन पड़ता है। आहाहा! एक आया था न वहाँ, (संवत्) ९९वें की साल में, एक वेदान्ती आया था कि इस जैन में ऐसी अध्यात्म की बात! ऐसी जैन में कहाँ से आयी? कौन कहता है यह? ऐसा कि जैन में तो यह व्रत पालना और भक्ति करना यह सब ऐसा? इसलिए कहा लाओ न, सुनने जाऊँ — ऐसा करके आया था। बात करते-करते ऐसी बात निकली, परमहंस था कोई वेदान्ती (था)। (ऐसी बात निकली) कि देखो भाई! आत्मा नित्य तो है, परन्तु अनित्य भी है। (यह सुनकर वह) भागा कि हाय...हाय... अनित्य? अरे भाई! आत्मा है — ऐसा निर्णय कौन — ध्रुव करता है या पर्याय करती है? अनित्य निर्णय करती है या नित्य निर्णय करता है? उसे भी यह बात (नहीं रुची) अभी सर्वत्र गड़बड़ चल रही है। आहाहा! ऐसा कि जैन में फिर अध्यात्म की बात और आत्मा की बात कहाँ से आयी? ऐसा कि जैन में तो मानो क्रियाकाण्ड और व्रत और वही... ऐसा लोगों ने माना है, बाहर का जैनधर्म। आहाहा!

श्रोता : जैन में होवे तो कर्म की बात होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म की बात और क्रिया की बात।

श्रोता : आत्मा की बात बिल्कुल है नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! तब उससे कहते हैं कि बापू! भगवान तो सच्चिदानन्द प्रभु है, परन्तु उसका निर्णय करने की पर्याय अनित्य है। अरे! आत्मा अनित्य? भागा! आहाहा!

यह शास्त्रज्ञान भी अनित्य है, यह तो क्षणिक पर, वास्तविक यह ज्ञान नहीं परन्तु आत्मा का ज्ञान हुआ... आहाहा! वह पर्याय भी क्षणिक है। ध्रुव का ज्ञान हुआ, परन्तु पर्याय क्षणिक है। आहाहा! अरेरे...! दो वस्तु ही ऐसी है — अपरिणामी — परिणमन। परिणमन में अपरिणामी पारिणामिकभाव का ज्ञान होता है। क्या कहा? परिणमन में... परिणमन अनित्य है; परिणमन में अपरिणामी पारिणामिकभाव का ज्ञान होता है। आहाहा! इस अपरिणामी का अर्थ — उसमें पर्याय नहीं होती, परन्तु है उसका नाम पारिणामिकभाव। आहाहा! पारिणामिकभाव का अर्थ, परिणमे इसलिए पारिणामिक — ऐसा नहीं है। सहज स्वभाव को — अपरिणामी को पारिणामिकभाव कहते हैं। आहाहा! अरे...! कभी ऐसा तत्त्व, वीतराग-सर्वज्ञ परमात्मा के पंथ में जन्मे, उन्हें ही पता नहीं पड़ता। अरेरे...! आहाहा!

क्या जानने के कारण से पूर्व स्वयं आत्मा का ज्ञान नहीं होता और पूर्व में गुरु से भी नहीं हुआ तो इससे पहले क्या अज्ञानी था? आहाहा! क्या अज्ञानी ही है? आत्मा अज्ञानी है? आहाहा! ज्ञानस्वभाव का भण्डार प्रभु अज्ञानी है? आहाहा! **क्योंकि उसे सदा अप्रतिबुद्धत्व है?...** आहाहा! क्योंकि अपने स्वभाव का ज्ञान नहीं है। अप्रतिबुद्धत्व, देखो! इस समयसार में अप्रतिबुद्ध को समझाते हैं। कितने ही कहते हैं कि यह समयसार तो मुनियों के लिए है। यहाँ तो (श्रोता : वह होने के लिए) यह होने का हो फिर भी यह तो अप्रतिबुद्ध को समझाते हैं। समयसार, आहाहा!

अप्रतिबुद्ध ही है? **उसका उत्तर — ऐसा ही है, वह अज्ञानी ही है।** अपने ज्ञानस्वभाव की एकाग्रता नहीं हुई, उस सन्मुख स्वीकार नहीं हुआ। 'मैं आनन्द और ज्ञानस्वरूप हूँ' — ऐसी दृष्टि नहीं हुई तब तक वह अज्ञानी है। आहाहा! पर्याय में अज्ञानी है। वस्तु भले ही ज्ञान और आनन्द है। आहाहा! द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों ले लिये। द्रव्य, स्वभावभान; गुण, स्वभाव और उसका भान हुआ, वह पर्याय। और भान न हुआ, वह अज्ञानरूपी पर्याय, आहाहा! ऐसी बात बापू! द्रव्य, गुण और पर्याय का कहाँ पता है? आहाहा! बापू! अभी तो द्रव्य, गुण और पर्याय का नाम भी नहीं आता। पर्याय अर्थात् क्या? (ऐसा) व्यक्ति कहता था, पण्डित आया था, दक्षिण का पण्डित आया था, कोमल व्यक्ति

था, (कहता था) पर्याय अर्थात्? अरे! परन्तु तुम बड़े पण्डित हो... यहाँ आया था। वह बीस पंथी, केसर से और अमुक से भगवान की पूजा करता, भाई! यहाँ वह रिवाज नहीं है बापू! परन्तु कोमल व्यक्ति था। पण्डित, फिर तो वह कहे — पर्याय? अरे! परन्तु क्या तुम्हें — द्रव्य त्रिकाली वस्तु, गुण त्रिकाली स्वभाव, और वर्तमान पलटती अवस्था, वह पर्याय। आहाहा! उस पर्याय में पर्यायवान का ज्ञान होता है। आहाहा! कठिन बात, बापू! बहुत बदलाव हो गया है। आहाहा!

यह पर्याय ज्ञायक सन्मुख झुकती है। आहाहा! तब ज्ञान की पर्याय का परिणामन निर्मल होता है। इस सम्यग्दर्शन की पर्याय कहो, ज्ञान की पर्याय कहो, स्वरूपाचरण की कहो, आनन्द की कहो, शान्ति की कहो, स्वच्छता की कहो, प्रभुता की, ईश्वरता की कहो — यह सब ज्ञान की पर्याय है। आहाहा! अब यह ऐसा मार्ग! अन्य तो अपवास करो, छठ करो, संघ करो, व्रत करो, रस छोड़ो (यह) सीधा-सादा था। यह सब तो भटकने का रास्ता है। तुम दान दो पाँच-पच्चीस लाख का... इतना सब तो क्या दे, पाँच, पच्चीस, पचास लाख थोड़े ही दे! आहाहा! कहाँ यह चीज इसकी थी? इसमें कदाचित् राग की मन्दता का भाव करे वह भी पुण्य है और पुण्य में एकाग्रता वह मिथ्यात्व है। आहाहा! पुण्य की सेवा की है, आहाहा! ऐसा मार्ग है बापू! अरेरे! आहाहा!

श्रोता : संस्था की सेवा करना या नहीं करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन किसकी सेवा करता है ? राग और पुण्य के भाव की सेवा करता है, अज्ञानभाव से... आहाहा! अरेरे! शाब्दिक ज्ञान की सेवा, आहाहा! इसे महत्व लग जाता है, मानो कि मैंने कितना जाना ? अरे भगवान! सुन न भाई! तुझे अहं पद (मान) आ गया है मिथ्यात्व का। आहाहा! और जवाब देना आवे और धड़ाधड़ (जवाब देना आवे) तो मानो कि आहाहा! भाई! क्या है ? यह तो स्वाभाविक है। आहाहा! यहाँ तो परमात्मा... सन्त कहते हैं, वह परमात्मा कहते हैं; परमात्मा कहते हैं, वह सन्त कहते हैं। प्रभु! तूने स्वयं अपने ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा की तुझे कभी एक क्षण महिमा नहीं आयी और पुण्य-पाप तथा वर्तमान शास्त्रज्ञान की महिमा तूने कभी नहीं छोड़ी, प्रभु! आहाहा! ऐसा यहाँ भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूपी दर्शन करे प्रभु तू आहाहा! वह अप्रतिबुद्ध

है — ऐसा शिष्य कहता है, हाँ! अभी कि हाँ... हाँ... ऐसा ही है, अप्रतिबुद्ध है, अपने स्वरूप में ज्ञान है, आनन्द है और वह अप्रतिबुद्ध है? हाँ, अप्रतिबुद्ध है। स्वरूप का — आनन्दकन्द ज्ञानस्वरूप भगवान का ज्ञान नहीं हुआ और अकेला राग तथा शब्दज्ञान में एकाग्र हो गया। आहाहा! ए...ई...! सुरेशभाई! क्या होगा ऐसा वह, भाई! ऐसा मार्ग कहाँ से? ए... झाँझरीजी! यह अन्तरिक्ष की सेवा करना... और सेवा-बेवा कर नहीं सकता — ऐसा कहते हैं। शुभभाव आवे, विकल्प (आवे) आहाहा! परन्तु उसकी एकाग्रता होवे तो मिथ्यात्व है। आहाहा! गजब बात है बापू! वीतराग... वीतराग... वीतराग... तीन लोक का नाथ सर्वज्ञस्वरूपी प्रभु, यह आत्मा, हाँ! यह सर्वज्ञस्वरूपी परमात्मा! ज्ञानस्वरूपी कहा न? यह ज्ञानस्वभाव इसे कहा न? यह सर्वज्ञस्वभाव, ऐसा। आहाहा! उस ओर की एकाग्रता एक क्षण भी-समयमात्र भी कभी नहीं की और एक समयमात्र भी सेवा करे तो उसके जन्म-मरण का अन्त आ जाये। आहाहा! भव का अन्त वहाँ है, आहाहा! सुख का पंथ वहाँ है, भव का अन्त वहाँ है। आहाहा! ऐसा सोनगढ़ के नाम से लोगों को कठिन पड़ता है। अरेरे! यह कौन कहते हैं? यह शास्त्र कहते हैं या नहीं? आहाहा!

गाथा १९

तर्हि कियन्तं कालमयमप्रतिबुद्धो भवतीत्यभिधीयताम् -

कम्मे णोकम्महि य अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं ।

जा एसा खलु बुद्धी अप्पडिबुद्धो हवदि ताव ॥१९॥

कर्मणि नोकर्मणि चाहमित्यहकं च कर्म नोकर्म ।

यावदेषा खलु बुद्धिरप्रतिबुद्धो भवति तावत् ॥

यथा स्पर्शरसगन्धवर्णादिभावेषु पृथुबुध्नोदराद्याकारपरिणतपुद्गलस्कन्धेषु घटोऽयमिति, घटे च स्पर्शरसगन्धवर्णादिभावाः पृथुबुध्नोदराद्याकारपरिणतपुद्गल-स्कन्धाश्चामी इति वस्त्वभेदेनानुभूतिस्तथा कर्मणि मोहादिष्वन्तरंगेषु नोकर्मणि शरीरादिषु बहिरङ्गेषु चात्मतिरस्कारिषु पुद्गलपरिणामेष्वहमित्यात्मनि च कर्म मोहादयोऽन्तरंगा नोकर्म शरीरादयो बहिरङ्गाश्चात्मतिरस्कारिणः पुद्गलपरिणामा अमी इति वस्त्वभेदेन यावन्तं कालमनुभूतिस्तावन्तं कालमात्मा भवत्यप्रतिबुद्धः। यदा कदाचिद्यथा रूपिणो दर्पणस्य स्वपराकारावभासिनी स्वच्छतैव वह्नैरौष्ण्यं ज्वाला च तथा नीरूपस्यात्मनः स्वपराकारावभासिनी ज्ञातृत्वैव पुद्गलानां कर्म नोकर्म चेति स्वतः परतो वा भेदविज्ञानमूलानुभूतिरुत्पत्स्यते तदैव प्रतिबुद्धो भविष्यति।

अब, यहाँ पुनः पूछते हैं कि यह आत्मा कितने समय तक अप्रतिबुद्ध रहता है, वह कहो। उसके उत्तररूप गाथासूत्र कहते हैं —

नोकर्म कर्म जु 'मैं' अवरु, 'मैं' में कर्म नोकर्म हैं ।

यह बुद्धि जबतक जीव की, अज्ञानी तब तक वो रहे ॥१९॥

गाथार्थ : [यावत्] जब तक इस आत्मा की [कर्मणि] ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, भावकर्म [च] और [नोकर्मणि] शरीरादि नोकर्म में, [अहं] 'यह मैं हूँ' [च] और [अहकं कर्म नोकर्म इति] मुझमें (-आत्मा में) 'यह कर्म-नोकर्म हूँ' — [एषा खलु बुद्धिः] ऐसी बुद्धि है, [तावत्] तब तक [अप्रतिबुद्धः] यह आत्मा अप्रतिबुद्ध [भवति] है।

टीका : जैसे स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि भावों में तथा चौड़ा, गहरा, अवगाहरूप उदरादि के आकार परिणत हुए पुद्गल के स्कन्धों में 'यह घट है' इस प्रकार और घड़े में 'यह स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि भाव तथा चौड़े, गहरे, उदराकार आदिरूप परिणत पुद्गल-स्कन्ध हैं' इस प्रकार वस्तु के अभेद से अनुभूति होती है, इसी प्रकार कर्म-मोह आदि अन्तरंग परिणाम तथा नोकर्म-शरीरादि बाह्य वस्तुएँ-सब पुद्गल के परिणाम हैं और आत्मा का तिरस्कार करनेवाले हैं - उनमें 'यह मैं हूँ' इस प्रकार और आत्मा में 'यह कर्म-मोह आदि अन्तरङ्ग तथा नोकर्म-शरीरादि बहिरङ्ग आत्म-तिरस्कारी (आत्मा के तिरस्कार करनेवाले) पुद्गल-परिणाम हैं' इस प्रकार वस्तु के अभेद से जब तक अनुभूति है, तब तक आत्मा अप्रतिबुद्ध है और जब कभी, जैसे रूपी दर्पण की स्वच्छता ही स्व-पर के आकार का प्रतिभास करनेवाली स्वच्छता ही है और उष्णता तथा ज्वाला अग्नि की है, इसी प्रकार अरूपी आत्मा की तो अपने को और पर को जाननेवाली ज्ञातृता ही है और कर्म तथा नोकर्म पुद्गल के हैं। इस प्रकार स्वतः अथवा परोपदेश से जिसका मूल भेदविज्ञान है ऐसी अनुभूति उत्पन्न होगी तब ही (आत्मा) प्रतिबुद्ध होगा।

भावार्थ : जैसे स्पर्शादि में पुद्गल का और पुद्गल में स्पर्शादि का अनुभव होता है अर्थात् दोनों एकरूप अनुभव में आते हैं, उसी प्रकार जब तक आत्मा को, कर्म-नोकर्म में आत्मा की और आत्मा में कर्म-नोकर्म की भ्रान्ति होती है अर्थात् दोनों एकरूप भासित होते हैं, तब तक तो वह अप्रतिबुद्ध है और जब वह यह जानता है कि आत्मा तो ज्ञाता है और कर्म-नोकर्म पुद्गल के ही हैं तभी वह प्रतिबुद्ध होता है। जैसे दर्पण में अग्नि की ज्वाला दिखाई देती है, वहाँ यह ज्ञात होता है कि 'ज्वाला तो अग्नि में ही है, वह दर्पण में प्रविष्ट नहीं है, और जो दर्पण में दिखाई दे रही है, वह दर्पण की स्वच्छता ही है;' इसी प्रकार 'कर्म-नोकर्म अपने आत्मा में

प्रविष्ट नहीं हैं; आत्मा की ज्ञान-स्वच्छता ऐसी ही है कि जिसमें ज्ञेय का प्रतिबिम्ब दिखाई दे; इसी प्रकार कर्म-नोकर्म ज्ञेय हैं इसलिए वे प्रतिभासित होते हैं' — ऐसा भेदज्ञानरूप अनुभव आत्मा को या तो स्वयमेव हो अथवा उपदेश से हो, तभी वह प्रतिबुद्ध होता है।

गाथा - १९ पर प्रवचन

अब, यहाँ पुनः पूछते हैं कि यह आत्मा कितने समय तक.... आहाहा! प्रभु तब अब ऐसा अज्ञानी अप्रतिबुद्ध कितने काल तक रहेगा? समझ में आया? यह पूछते हैं कि यह आत्मा, यह आत्मा कितने समय तक.... कितने काल तक अप्रतिबुद्ध रहता है, वह कहो। प्रभु! यह तो बताओ न, अप्रतिबुद्ध कैसे कहाँ तक? (रहेगा)। आहाहा! उसके उत्तररूप गाथासूत्र कहते हैं —

तर्हि कियन्तं कालमयमप्रतिबुद्धो भवतीत्यभिधीयताम् -

कम्मे णोकम्महि य अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं ।

जा एसा खलु बुद्धी अप्पडिबुद्धो हवदि ताव ॥१९॥

नोकर्म कर्म जु 'मैं' अवरु, 'मैं' में कर्म नोकर्म हैं।

यह बुद्धि जबतक जीव की, अज्ञानी तब तक वो रहे ॥१९॥

आहाहा! टीका : जैसे स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि भावों में तथा चौड़ा, गहरा, अवगाहरूप उदरादि के आकार परिणत हुए पुद्गल के स्कन्धों में 'यह घट है'.... देखो, क्या कहते हैं? स्पर्श, रस, गंध, और रंग आदि भावों में और चौड़ा-गहरा अवगाहरूप आकार, उदरादि आकार परिणति हुए पुद्गलों के स्कन्धों में यह घट है। इस प्रकार और घड़े में 'यह स्पर्श, रस, गंध, वर्ण.... आकार परिणत पुद्गल के स्कन्ध आदि भाव चौड़े, गहरे, उदर आकार आदि परिणत पुद्गल-स्कन्ध है। क्या कहा? वर्ण, गंध, रंग स्पर्श में घट और घट में वर्ण, रंग, गंध, स्पर्श है। आहाहा! पारस्परिक! आहाहा! इस प्रकार वस्तु के अभेद से अनुभूति होती है,.... घट और घट का भाव — वर्ण, गंध,

रस, स्पर्श वह घट है और घट वह वर्ण, रंग, गंध, स्पर्शरूप है, अभेद है। समझ में आया ? इस प्रकार वस्तु के अभेद से अनुभूति होती है,.... ज्ञान होता है। उसी प्रकार.... आहाहा! कर्म-मोह आदि अन्तरंग परिणाम.... आहाहा! भावकर्म और यह सब। आहाहा! कर्म-मोह आदि अन्तरंग परिणाम.... राग-द्वेष-मिथ्यात्व परिणाम। आहाहा! पुद्गल स्कन्ध है। आहाहा! अन्तरंग परिणाम तथा नोकर्म-शरीरादि बाह्य वस्तुएँ.... यह शरीर, वाणी, मन, वह बाह्य वस्तु, यह नोकर्म — ऐसे ये सब पुद्गल के परिणाम हैं.... यह तो पुद्गल के परिणाम हैं। आहाहा! शुभ-अशुभराग और शरीरादि, ये तो सब पुद्गल के परिणाम हैं। आहाहा! और आत्मा का तिरस्कार करनेवाले हैं... आहाहा! क्या कहते हैं ? यह शुभ-अशुभभाव, आत्मा का तिरस्कार करनेवाला है। आहाहा! मैं हूँ, तुम नहीं। पुण्य-पाप का भाव मैं हूँ, यह पुण्य-पाप का भाव आत्मा का तिरस्कार करता है। भगवान पूर्णानन्द का नाथ पड़ा है। आहाहा!

बहुत कठिन बातें! क्या गाथा और क्या टीका! आहाहा! कोई गजब, अभी भरतक्षेत्र में समयसार! आहाहा! सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ वीतराग का कहा हुआ हो तो यह एक है। जिसमें सर्वांगी पूर्ण बात सब (आयी है)। आहाहा! उसके साथ प्रवचनसार, नियमसार, सब है। आहाहा!

ये तिरस्कार करनेवाले हैं। यह कौन, क्या कहते हैं ? कि शरीर, वाणी, मन — यह मैं हूँ - ऐसा आता है तो भगवान आत्मा अखण्डानन्द का तिरस्कार होता है। पुण्य और पाप के भाव पर दृष्टि है, तब तक भगवान का तो तिरस्कार हुआ। भगवान तीन लोक का नाथ अन्दर विराजमान है। आहाहा! यह... मैं यह... मैं नहीं ऐसा। क्या कहते हैं यह ? ये शुभाशुभभाव... आहाहा! अरे! शास्त्र का ज्ञान, वह मैं हूँ, यह भगवान का अनादर-तिरस्कार करता है। गजब बात है! आहाहा! है ?

श्रोता : गजब बात है या परम सत्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : परम सत्य... परम सत्य... आहाहा! परम सत्य... साहेब, भूतार्थ भगवान सत्यार्थ प्रभु, परम सत्य प्रभु है। आहाहा! एक समय में भी भूतार्थ भगवान सत्यार्थ प्रभु है, उसका अनादर करके राग और शरीर मैं हूँ, वह स्वरूप का तिरस्कार करता

है, प्रभु! आहाहा! भाषा तो सादी है, भाव तो है वह है। आहाहा! आहाहा! आहाहा! गजब बात करते हैं, टीका तो टीका!! आहाहा!

शरीर आदि – वाणी, मन; पुण्य और पाप का अन्तरंग परिणाम, वह बाह्यवस्तु है। देखो! यह तो बाह्यवस्तु है, यह अन्तरवस्तु नहीं। आहाहा! बाह्यवस्तु में सब पुद्गल के परिणाम हैं और आत्मा का तिरस्कार करनेवाले हैं। आहाहा! उनका जहाँ स्वीकार करने जाते हैं, भगवान का अनादर हो जाता है। अन्दर आनन्द का नाथ प्रभु पड़ा है, उसका तिरस्कार होता है, भाई! आहाहा! ऐसी बात है।

‘उनमें यह मैं हूँ’.... उनमें यह मैं हूँ। आहाहा! इस प्रकार और आत्मा में ‘यह कर्म-मोह आदि अन्तरङ्ग तथा नोकर्म-शरीरादि बहिरङ्ग आत्म-तिरस्कारी... आत्मा का तिरस्कार करनेवाला पुद्गल परिणाम है। यह राग, शरीर और वाणी में मैं हूँ और राग, शरीर आदि मेरे में है... आहाहा! अब ऐसी बात! यहाँ तो पुण्य से धर्म होता है... अरे प्रभु! क्या करता है तू? यह पुण्य अन्तरंग परिणाम, उसमें मैं हूँ और मेरे में वह है... मिथ्यात्व... तिरस्कार तेरा... आहाहा! प्रभु! समझ में आया? ओहोहो! थोड़े शब्दों में गागर में सागर भर दिया है। उनमें यह मैं हूँ, यह मैं हूँ — राग, पुण्य, दया, दान, विकल्प, राग। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग, शास्त्र की भक्ति का राग... आहाहा! वह मैं हूँ इस प्रकार; और आत्मा में कर्म नोकर्म रागादि अन्तरंग परिणाम तथा शरीर, वाणी आदि बहिरंग परिणाम। (आत्म) तिरस्कारी। आहाहा! (आत्मा के तिरस्कार करनेवाले) पुद्गल-परिणाम हैं’.... मुझमें ये हैं... तिरस्कार करनेवाली चीज मुझमें है। आहाहा! गजब है।

इस प्रकार वस्तु के अभेद से... क्या? यह पुण्य और पाप के परिणाम अन्तरंग; बहिरंग शरीर, वाणी, मन, वह मैं हूँ और वे मुझमें हैं – ऐसी (मान्यता) जब तक है... जैसे घट और वर्ण, गंध, रस, स्पर्श अभेद है। घट वर्ण, गंध, रस, स्पर्श है। वर्ण, गंध, रस, स्पर्श सब घटरूप है; वैसे यह आत्मा पुण्य और पाप, शरीर, वाणी, मन मैं हूँ, यह अन्तरंग परिणाम आदि मुझमें हैं – ऐसे अभेद से जब तक अनुभूति है... अभेद से जब तक अनुभव है अर्थात् ज्ञान है। आहाहा! ऐसा मार्ग है... तब तक आत्मा अप्रतिबुद्ध है। आहाहा! क्या

कहा ? कि जब तक भगवान आत्मा में पुण्य, पाप, शरीर, वाणी, कर्म में यह मैं हूँ और यह चीज मुझमें है, तब तक वह अज्ञानी अप्रतिबुद्ध है। आहाहा! उसे ज्ञानस्वरूप में यह रागादि नहीं और राग में आत्मा नहीं, इसका पता नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें बहुत कठिन! देव, गुरु, शास्त्र की भक्ति का राग, उस राग में मैं हूँ और राग मुझमें है... आहाहा! यह तो, राग से मेरा कल्याण होगा (ऐसा मानता है) तो उसका अर्थ यह हुआ कि राग मुझमें है। आहाहा! तब तक आत्मा अप्रतिबुद्ध.... अज्ञानी है। है न? आहाहा! फिर अब विशेष बात है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)